अध्याय- तृतीय

प्रतिश्रुति

(ताटंक या लावनी छंद)

तात अलक्षित हैं कुछ दिन से यह, चिन्ता का कारण है ।
अविदितहेतु अशांतमना हूं, शीघ्र विधेय[1] निवारण है ।
कृतसंध्या[2] वे गये जनक के, जातरूपयुत[3] मंदिर में ।
लगा प्रवेश हुआ हो जैसे, शून्य भवन विगतेन्दिर[4] में ॥1॥

आसनस्थ थे तात वहां पर, शून्य दृष्टि शून्याश्रित[5] थी ।
नीरवता ने जैसे उर की, चिंता की परिभाषित थी ।
धृतपदयुगशिर सुत को आशिष, दे समीप ही बैठाया ।
कुशल उसी की लगे पूछने, सुरसरिसुत[6] उर भर आया ॥2॥

कहा तात क्या दुख हो सकता, मुझे आपकी छाया में ।
किंतु देखता तात वदन पर, क्यों विषाद की छाया मैं ।
बोले शांतनु तनुज तुम्हारे, सदृष मिला मैं धन्य हुआ ।
देख तुम्हारी नीति कुशलता, मुझे प्रषम[7] अनुमन्य[8] हुआ ॥3॥

बोला सविनय तनय अनय[9] का, कार्य कभी कुछ हो मुझसे ।
तो कृपया सत्वर[10] बतलायें, निष्कृति[11] हो संभव सुख से ।
कहा प्रतीपज[12] ने निर्मलता, तवाचार का भूषण है ।
क्या गुणार्क[13] के सम्मुख दिखता, कभी यहां तम दूषण है ॥4॥

जाओ तुम निश्चित चलाओ, शासन तंत्र धर्म विधि से ।
करो लोक हित तत्परता से, सद्व्ययशील राजनिधि से ।
बनो चण्डकर[14] द्वेषण हित ही, जन में हिमकरता[15] धारो ।
मृगया में आसक्ति न करना, केवल दुर्जन को मारो ॥5॥

तुम युवराज बने युवराज्ञी, मुझे खोजकर है लानी ।
सुखवर्धनशीला हम सबको, पावन ज्यों गंगा पानी ।
एकाकी जीवन सुत सूना, नीरस और उग्रतर है ।
नहीं त्रिवर्ग साध्य होता है, चाहे बुद्धिमान नर है ॥6॥

1. करने योग्य ,कर्तव्य	2. संध्या करके	3. चांदी	4. शोभाशून्य में
5. आकाश में टिकी	6. गंगापुत्र भीष्म	7. शान्ति	8. अनुमति योग्य
9. अनीति	10. शीघ्र	11. पश्चाताप , प्रायश्चित	
12. प्रतीप पुत्र शांतनु	13. गुणों के सूर्य	14. सूर्य	15. चंद्रमा का भाव

चले गये कर नमन नदीसुत[1], जनहित में थे व्यस्त हुए ।
और इधर शांतनु अधिकाधिक, चिंता से संत्रस्त हुए ।
जाती थी न कभी भी मन से दाषेयी[2] मनोज्ञ प्रतिमा ।
रखते थे फिर भी प्रतीपसुत, राजोचित अपनी गरिमा ॥7॥

बहुत पूछने पर अमात्य ने, हो सलज्ज नृप आधि कथा ।
वर्णित की तब हुई भीष्म को, अति असह्य मानसी व्यथा ।
यह वृत्तांत स्वयं सारथि से, पटु अमात्य ने पूर्व सुना ।
किंतु विषय की प्रकृति देखकर, मौनाश्रय ही श्रेष्ठ चुना ॥8॥

दाशराजदुहिता[3] परिणय में, आर्य न कुछ भी बाधा है ।
फिर क्यों नहीं प्रयोजन अब तक, पूज्य पिता ने साधा है ।
कहा सचिव ने दाशराज का, कन्या शुल्क अनोखा है ।
निज दोहित्र बने कुरू शासक, भावी सपना देखा है ॥9॥

थी यह शर्त अधर्म संगता, अत: न कुरूपति ने मानी ।
रीति नीति के उच्छेदक वे, हो सकते न परम ज्ञानी ।
ज्येष्ठतनयअधिकारहरण को, कौन वरण[4] कर सकता है ।
कौन कामना तुच्छ धर्म से, ऊपर नर धर सकता है ॥10॥

नरगणनायक को सायकवत[5], वृत्त यही को संतप्त करे ।
मार्ग नहीं भासित होता है, जो कुरूवर की व्यथा हरे ।
बीस वर्ष से अधिक हो चुके, मां गंगा को गए हुए ।
नरपति कभी न नारी के प्रति, इतने उत्सुक तात हुए ॥11॥

बोले तब गांगेय इसी क्षण, मुझको प्रस्थित होना है ।
जनक व्यथा का भार न दुर्वह, आगे मुझको ढोना है ।
जीवन व्यर्थ अधम उस सुत का, देखे जिसने व्यथित पिता ।
उनके सुख में ही है सारी, मेरी सुख सुषमा निहिता ॥12॥

1. गंगापुत्र भीष्म	2. दाशराज कन्या सत्यवती	
3. सत्यवती	4. चुनना	5. बाण के समान

अननुज्ञात[1] पिता से प्रस्थित, हुए देवव्रत सत्वर ही ।
इस जगती के सकल सौख्य हैं, नश्वर पीड़क गत्वर[2] ही ।
राज्य पिता का है मैं भी तो, उनका ही लघुतर धन हूं ।
चाहे जिसको अर्पित कर दें, मैं क्या इसमें बंधन हूं ॥13॥

उनका तोष महाधन मेरा, उनका आशिष ही निधि है ।
है पीयूष स्नेह उनका ही, सेवा पूजा की विधि है ।
चली गयी हैं जननि तात ने, धर्म निभाया माता का ।
प्रत्युपकार असंभव ही है, प्राणों से भी त्राता का ॥14॥

चले देखते भीष्म प्रकृति की, सुषमा पथ में थी न्यारी ।
क्यों न मनुज ईश्वर प्रति होता, यह निधि पाकर आभारी ।
जहां खेलना उचित बालवत, नर स्वयुक्त[3] बनता स्वामी ।
कल्पित उस अधिकार हेतु ही, बनता हिंसा अनुगामी ॥15॥

(दोहा)

अनुभव करते देवव्रत जननी सदृष निसर्ग[4] ।
लगा उन्हें सुख स्रोत है जग में मात्र विसर्ग[5] ॥16॥

हो प्रक्षुब्ध गंगा हुई वर्धित वेग तरंग ।
अंगज जब प्रस्थित हुआ पितु हितार्थ अनुगंग[6] ॥17॥

यद्यपि ग्राहवती[7] नदी पर सतृष्ण सब सत्व ।
आते तृषापहार[8] को क्या है जीवन तत्व ॥18॥

काल व्याल[9] रहता सदा रस के मध्य निगूढ़ ।
भोग तृषा कर्षित[10] मनुज देख न पाता मूढ़ ॥19॥

पादपता[11] त्यागेच्छु से सरिता जल स्वच्छंद ।
आचमनोत्सुक लग रहे झुके हुए तरू वृंद ॥20॥

हंस पंक्ति उड्डीन[12] जो उसकी छाया धार ।
सुरसरि ने पहना नवल मानो मुक्ता हार ॥21॥

1. आज्ञा लिए बिना	2. अस्थिर, जाने वाले	3. स्वयंभू
4. प्रकृति	5. त्याग, विसर्जन	6. गंगा के किनारे - किनारे
7. मगरयुक्त	8. प्यास बुझाने	9. मगर , सर्प
10. खींचा गया, दुःखी	11. वृक्षता, पैर से पीने का स्वभाव	
12. उड़ता हुआ		

शफरीगण[1] द्युति से करें मर्दित राजत[2] मान ।
जिनके हित रय[3] वारि का मात्र समीर समान ॥22॥

लगता तुमको क्या न वक अति संग्रह का दोष ।
भरते पूरा मीन से गल लंबित जो कोष ॥23॥

भीमकाय वट हैं कहीं अर्जुन अनुतट[4] प्रांशु[5] ।
कहीं सघनतर कुंज हैं वारितरविशुभ्रांषु ॥24॥

उन्नत शाल विषाल हैं पुष्पित मधुक[6] ससार[7] ।
बहुवयधर[8] अष्वत्थ[9] हैं बहुवयधर सहकार[10] ॥25॥

अश्वत्थादि लुटा रहे फल विभूति हो प्रीत ।
द्विजगण[11] को सज्जन सदृष पाने वृद्धिस्फीत ॥26॥

(सरसी)

दर्शित रदन[12] वराह मानता निज को द्विरद[13] समान ।
स्वल्प शक्ति भी पाकर पामर धरते हैं बहुमान ॥27॥

आयत[14] तनु बंधन कुषल सबल किंतु पद हीन ।
कुटिल गमन सत्कांति अहि जैसे व्यसन नवीन ॥28

(दोहा)

तुम हो पटु गरणज्ञ[15] अहि[16] हम हैं मात्र रणज्ञ ।
तुम गत्वर पदहीन भी हम अन्वय[17] पदवद्ध ॥29॥

भूकृत नीड सुचिंतिता रहती टिट्टिभ घोर ।
होती त्वरित विरावयुत[18] जो जाता उस ओर ॥30॥

(ताटंक या लावनी छंद)

निज अधिकार सचेष्ट दाष है, दोष नहीं कुछ भी इसमें ।
सभी अपत्य हितार्थ यत्नरत, क्यों हो रोष मुझे इसमें ।
याचक को अधिकार कहां है, अपनी रूचि से चलने का।
दाशराज अभ्यस्त सदा ही, चतुर मीन को छलने का ॥31॥

1. मछलियों का समूह	2. चांदी का	3. प्रवाह, वेग	4. तट के सहारे
5. लम्बा, ऊंचा	6. महुआ का पेड़	7. शक्तिशाली, सरस	
8. अनेक पक्षी युक्त, बहुत उम्र वाला		9. पीपल का वृक्ष	10. आम का वृक्ष
11. पक्षी , ब्राह्मण	12. दांत	13. हाथी	14. लम्बा
15. जो निगलने में कुशल है		16. सर्प	17. वंश कुल
18 शोर मचाने वाली			

हम भी हैं कुरू नाथ प्रजा ही, न्याय मांगते इस कारण ।
हे युवराज आप भी नृप सम, करें न कोप वृथा धारण ।
योजनगंधा दिव्यरूपिणी, नृपवरणीय सुता मम है ।
इसके परिणय तक न युवा नृप, मुझको लब्ध चित्त शम[1] है ॥32॥

प्रौढ़ व्यक्ति को अनवद्यांगी[2], सुता कौन करता अर्पित ।
यदि न उसे दिखता हो भावी, अक्षय सुख धन भी संचित ।
नहीं आत्म के लिए मांगता, पुत्री का सुख अभिलाषी ।
महिषी[3] बने नहीं कांक्षित है, इसे बनाना कुरूदासी ॥33॥

कहा देवव्रत ने दाषोत्तम, सुता देय यह कुरूवर को ।
शोभित होती है सुकन्यका, प्राप्त सदा उत्तम वर को ।
मान्य तुम्हारा वचन हमें है, सुताजातसुत राज्य करे ।
सकल मान पद धन वैभव जन, प्राप्त वही अविभाज्य करे ॥34॥

अपने भावी बंधु पक्ष में, स्वत्व[4] त्यागता सारा हूं ।
मुझे मात्र अभिलषित जनक सुख, उनका मैं अति प्यारा हूं ।
सर्व समक्ष वचन यह देता, मैं क्षत्रिय कुरू वंशज हूं ।
गंगासुत हूं शिष्य बृहस्पति का, में शांतनु अंशज हूं ॥35॥

सत्यवती थी खड़ी आड़ में, सुनकर यह न प्रसन्न हुई ।
तेजस्वी युवराज देखकर मन ही मन अवसन्न[5] हुई ।
धन्य त्याग है तात तुम्हारा, अनुपम पुत्र धरा पर हो ।
ऐसे महा मनस्वी के हित, कौन कार्य जो दुष्कर हो ॥36॥

मुझे अभी से पुत्र मिल गया, युवा धीर सक्षम त्यागी ।
और नृपेश्वर शांतनु जैसे, जनहित कर्ता अनुरागी ।
किंतु तभी सबको विस्मित करते, दाशराज आगे बोले ।
मैं कुमार आश्वस्त आपसे, निज प्रण से न क्षत्र[6] डोले ॥37॥

त्याग दिया है राज्य आपने, किंतु आपके वंशज तो ।
पुन:राज्य अधिगत[7] कर लेंगे, हरा पुत्रि के अंशज को ।
मुझे दूर का दिखता राजन, भावी की होती शंका ।
लुटे न कहीं वर्ष कुछ में ही, सपनों की स्वर्णिम लंका ॥38॥

1. शांति	2. निर्दोष अंगवाली	3. महारानी
4. अधिकार	5. विषाद युक्त	6. क्षत्रिय
7. प्राप्त करना, ले लेना		

(हरिगीतिका)
शंकालु की सुनकर गिरा, युवराज दीप्त कृषानु[1] से ।
भासित हुये उस घोष[2] में, गांगेय आतप[3] भानु से ।
अरूणाभ[4] लोचन हो गये, था स्वर बना घन गर्जना ।
करने चले भूपर अपर, विधिसम[5] नवल युग सर्जना ॥39॥

अनभिज्ञ हो पूरी तरह तुम, दाश क्षत्रिय धर्म से ।
सब अर्थ में है गो[6] सुरक्षा, विधेया सत् कर्म से ।
मम वचन शंकास्पद समझना, घोर है अवमानना[7] ।
पर क्षम्य यह अपराध है तव, यथासत्वा[8] भावना ॥40॥

फिर भी कुशंका का निवारण, यहां पर सुविधेय है ।
आधार लगता पंक[9] युत यदि, दोषयुत आधेय है ।
वश वर्तिनी करना नियति को, व्यर्थ का कुप्रयास है ।
धर्मपालन ही मनुज को, श्रेय धृत विश्वास है ॥41॥

(पंचचामर वृत्त)
सुनें दिशा महान व्योम देवदानवादि भी ।
शशांक अर्क[10] भी सुनें प्रभूत तारकादि भी ।
अखंड ब्रह्मचर्य धारता नदीज[11] आज से ।
अकाम[12] मैं हुआ समस्त नारि के समाज से ॥42॥

समीर चित्रभानु[13] वारि भूतधारिणी[14] यहां ।
धरें सुसाक्षि भाव दें प्रभाव पुत्र को महा ।
अलंघ्यता हिमाद्रि[15] की अकंपता स्वभाव में ।
भवेष[16] की कृपा रहे सुखैषणा[17] अभाव में ॥43॥

प्रकंपिता हुई मही थमा नदी प्रवाह था ।
सुरापगा[18] हुई अशांत था उठा प्रदाह सा ।
निनाद घोर व्योम में हुआ चला समीर था ।
हरेक भूत[19] ज्यों हुआ क्षणार्ध को अधीर था ॥44॥

1. अग्नि	2. बस्ती	3. ग्रीष्म ऋतु
4. क्रोध से लालिमा युक्त	5. दूसरे ब्रह्मा के	6. वाणी , पृथ्वी ,गाय
7. अपमान	8. स्वभाव के अनुसार	9. कीचड़
10. सूर्य	11. नदी पुत्र भीष्म	12. कामना शून्य
13. अग्नि	14. पृथ्वी	15. हिमालय समान
16. शिवजी	17. सुख की लालसा	18. गंगा
19 पंचमहाभूत, प्राणी		

(दोहा)

प्राणी द्वय अनुभूत था बस व्रत से उल्लास ।
द्यौपत्नी[1] वसु लोक में भूतल पर शठदाश ॥45॥

(हरिगीतिका)

सुन घोषणा यह घोर व्रत की, सचिव निष्चेतन हुए ।
पर्यश्रु[2] सारथ ने प्रणत हो, चरण युग उनके छुए ।
विह्वल हुई युवती जनक प्रति, लोचनों में रोष था ।
नतशीश कंपितगात्र केवट, वहां पर कृत दोष था ॥46॥

(ताटंक या लावनी छंद)

दाशराज दें मुझे अनुज्ञा, कृत प्रणाम कुरूवर बोले ।
सत्यवती के पालक ने तब, नीर भरे निज दृग खोले ।
बोला बेटी सदा आचरण, मर्यादा का ही करना ।
सुख से तुम कुरू राज भवन को, सेवार्चन से ही भरना ॥47॥

माता अब प्रस्थान करें यह, स्यंदन मेरा शोभित हो ।
सुख वल्लरी हस्तिनापुर में, पुनः आज से रोहित[4] हो ।
दोनो रथ पर चढ़े चला रथ, पुर की ओर तीव्र गति से ।
तुष्ट बहुत थे भीष्म किया जो, निर्णय आज विमल मति से ॥48॥

(दोहा)

नयन विषय अति क्रांत[5] रथ हरि[6] वेगोत्थित पांसु[7] ।
छायी पीछे देर तक दाशज हुए सपांसु[8] ॥49॥

1. घौ नामक वसु की पत्नी	2. अश्रुधार बहाता हुआ	3. केवट
4. वर्धित	5. दृष्टि से ओझल	6. घोड़े
7. धूल, राजकण	8. धूलयुक्त, कलंकयुक्त	